हमें ब्लैक-होल्स के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवादः अरविन्द गुप्ता

हमें ब्लैक-होल्स के बारे में कैसे पता चला?

आइसक एसिमोव

हिन्दी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

आइसक एसिमोव एक गजब के कहानीकार हैं। साइंस-फिक्शन के लिए वो सारी दुनिया में सुप्रसिद्ध हैं। विज्ञान के इतिहास के वो विशेषज्ञ हैं और वो उसे बेहद पठनीय तरीके से पेश करते हैं जिससे कि बच्चों से लेकर बड़े भी उसका आनंद उठा पाएं। उनके लेख विज्ञान के तथ्यों से भरे होने के बावजूद भी उन्हें मजेदार और रोचक कहानियों जैसे पढ़ा जा सकता है। बृहमांड में ब्लैक-होल्स क्या बला हैं? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? क्या ब्लैक-होल्स डरावने होत हैं? क्या वो वाकई में होते भी हैं, या वो काल्पनिक हैं? वैज्ञानिकों ने किस प्रकार टेलिस्कोपों के जरिए ब्लैक-होल्स के रहस्य को उजागर किया और सुलझाया उसका ब्यौरा आइसक एसिमोव इस पुस्तक में देते हैं। यहां आपको व्हाइट-डुआर्फस, पल्सर, रेड-जायंट्स और ब्लैक-होल्स के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी मिलेगी।

1. व्हाइट डुआर्फस

1844 में जर्मन खगोलशास्त्री फ्रेडरिच विल्हम बेसिल ने एक तारा खोजा, पर वो उसे देख नहीं पाए।

यह सब इस प्रकार हुआ।

आसमान में सभी तारे इधर-उधर चलते और भटकते रहते हैं। पृथ्वी से इतनी ज्यादा दूर होने के कारण उनकी गति हमें बहुत धीमी लगती है। टेलिस्कोप (दूरबीन) द्वारा बहुत सावधानी से नापने के बाद ही हमें उनकी स्थित में कुछ अंतर नजर आएगा।

पर इसमें टेलिस्कोप भी अधिक सहायक नहीं होंगें। जो तारे हमारे सबसे नजदीक हैं उन्हीं की स्थिति में हमें कुछ फर्क नजर आएगा। धीमी रोशनी से टिमटिमाते बाकी सारे तारे हम से अत्यधिक दूरी पर हैं इसलिए वे हमें अपने स्थानों पर स्थिर नजर आएंगे।

सिरियस पृथ्वी से नजदीक है। वो लगभग 8-करोड़ किलोमीटर दूरो पर है। पर अन्य तारों की तुलना में हम इसे नजदीक मानेंगे। वो रात्रि-आकाश का सबसे चमकीला तारा है। इसका एक कारण उसका पृथ्वी से नजदीक होना है। उसकी गति को टेलिस्कोप से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

बेसिल उसकी गति का सावधानी पूर्वक अध्ययन करना चाहते थे। क्योंकि पृथ्वी, सूर्य की परिक्रमा करती है इसलिए हम तारों को अलग-अलग कोणों से देख पाते हैं। पृथ्वी की गति के कारण सीधी रेखा की बजाए तारे की गति कुछ हिलती-डुलती रेखा में दिखती है। तारा पथ्वी के जितना अधिक करीब होगा यह हिलना-डुलना उतना अधिक होगा। हिलने-डुलने की मात्रा को सावधानी से माप कर हम पृथ्वी से तारे की दूरी ज्ञात कर सकते हैं। बेसिल की इसमें खास रुचि थी। 1938 में उसने अपना लक्ष्य हासिल किया।

फिर उसने सिरियस की गति के हिलने-डुलने को मापा। वो रात-दर-रात सिरियस की स्थित को मापता रहा। सिरियस के हिलने-डुलने की मात्रा बेसिल को अत्यधिक लगी। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा लगाने के कारण सिरियस की स्थित लगातार बदल रही थी। पर सिरियस की स्थिति मं एक अन्य धीमा बदलाव था जिसका पृथ्वी के घूमने से कोई सरोकार न था।

बेसिल ने अपना ध्यान सिरियस की इस नई गति पर केंद्रित किया। उसने पाया कि सिरियस किसी अन्य वस्तु के चारों उसी तरह घूम रहा था जैसे कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा लगाती है। गणना के बाद बेसिल ने पाया कि सिरियस को इस परिक्रमा को पूरा करने में 50 साल लगते हैं।

सिरियस इस पिंड की परिक्रमा क्यों लगाता था?

सूर्य के शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल से कारण ही पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। उसी प्रकार सिरियस भी किसी शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल की गिरफ्त में होगा।

सिरियस एक तारा है जिसका भार (परिमाण) सूर्य का ढ़ाई गुना है। (भार - वस्तु में कितना पदार्थ है उसका द्योतक होता है)।

सिरियम की गति से लगता था कि वो किसी पिंड के शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण बल की गिरफ्त में होगा। और वो पिंड कोई तारा होगा। इसका अर्थ होगा कि सिरियस, और उसका मित्र-तारा, दोनों एक दूसरे के चक्कर लगा रहे होंगे। हम यहां सिरियस को 'सिरियस-ए' और मित्र-तारे को 'सिरियस-बी' बुलाएंगे।

'सिरियस-ए' की चाल और गति से लगता था कि 'सिरियस-बी' हमारे सूर्य जितना विशाल तारा ही होगा।

इसके बावजूद बेसिल 'सिरियस-बी' को देख नहीं पाया। उसका वहां होना एकदम पक्का था - क्योंकि गुरुत्वाकर्षण बल का कुछ तो स्रोत्र होगा। बेसिल इस निर्णय पर पहुंचा कि 'सिरियस-बी' तारा अब जलकर राख हो चुका था। क्योंकि वो अब चमक नहीं रहा था इसलिए वो दिख भी नहीं रहा था। बेसिल ने उसे सिरियस का काला-मित्र बुलाया।

बाद में उसने प्रोसायन तारे की चाल को जांचा। भी प्रोयासन का भी एक काला-मित्र - 'प्रोसायन-बी' होना अनिवार्य था।

बेसिल ने ऐसे दो तारे खोजे जिन्हं वो देख नहीं सका।

1862 में टेलिस्कोप निर्माता एल्वान ग्राहम क्लार्क एक नए टेलिस्कोप के लिए लेंस बना रहा था। लेंस बहुत शुद्धता से घिसने के कारण उससे तारे बहुत स्पष्ट दिखते थे।

फिर उसने परीक्षण के लिए लेंस को सिरियस की ओर इंगित किया। क्या सिरियस नए टेलिस्कोप से एकदम स्पष्ट दिखेगा?

उसे तब बहुत आश्चर्य हुआ जब उसे सिरियस के पास प्रकाश की एक धुंधली चिंगारी दिखी। अगर वो चिंगारी एक तारा थी तो क्लार्क के पास जितने भी सितारों के नक्शे थे उन किसी में उसका उल्लेख नहीं था।

उसने अपने लेंस को अधिक शुद्धता से पॉलिश किया परन्तु प्रकाश की वो चिंगारी फिर भी लुप्त नहीं हुई। इस प्रकार की चिंगारी उसे अन्य किसी चमकीले तारे में नहीं दिखी।

अचानक, क्लार्क को लगा कि वो प्रकाश की चिंगारी बिल्कुल उस स्थान पर थी जहां काले-मित्र को होना चाहिए था। असल में वो 'सिरियस-बी' को देख रहा था। इसका मतलब 'सिरियस-बी' एकदम मृत तारा नहीं था। वो अभी भी चमक रहा था पर उसका प्रकाश 'सिरियस-ए' की तुलना में दस-हजार गुना कम था।
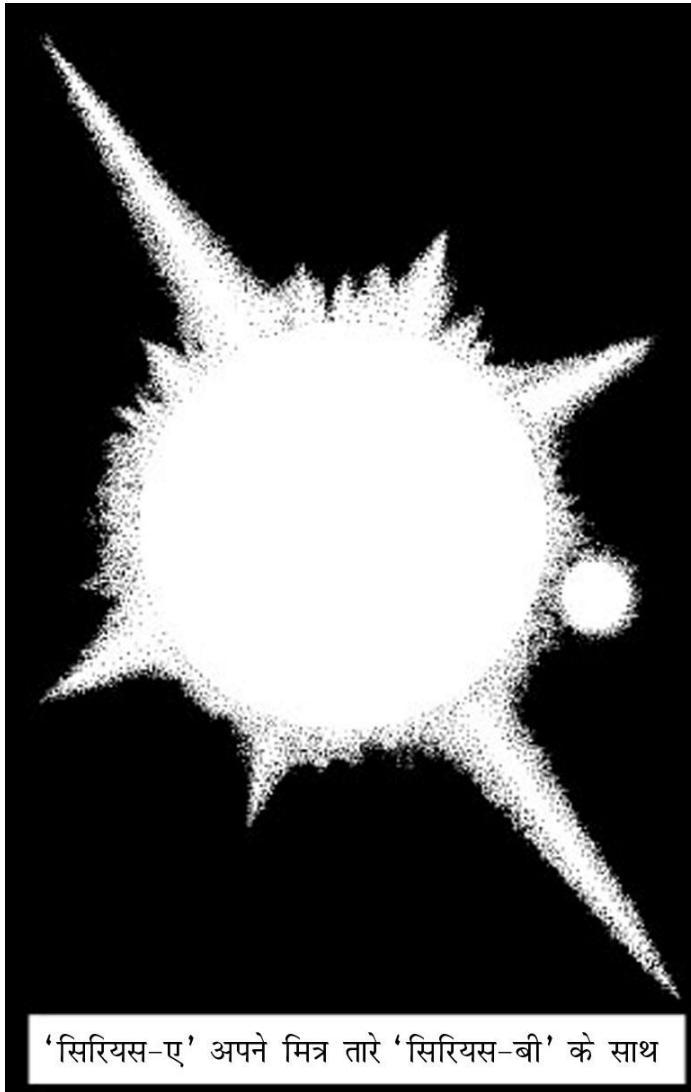
'सिरियस-ए' अपने मित्र तारे 'सिरियस-बी' के साथ

1895 में जर्मन-अमरीकी खगोलशास्त्री जॉन मार्टिन शेबरले को प्रोसायन के करीब प्रकाश की एक धुंधली चिंगारी दिखाई दी। वो 'प्रोसायन-बी' था और वो भी पूरी तरह मरा नहीं था।

शेबरले के समय से खगोलशास्त्रियों ने तारों के बारे काफी ज्ञान प्राप्त किया था।

प्रकाश, छोटी तरंगों से बनाता है और यह तरंगे अलग-अलग लम्बाई की होती हैं। वैज्ञानिकों ने तारों से आए प्रकाश को भिन्न लम्बाइयों के विस्तार में बांटना सीखा। इस विस्तार का स्पेक्ट्रम या वर्णक्रम कहते हैं।

1893 में जर्मन वैज्ञानिक विल्हम वीन ने दिखाया कि स्पेक्ट्रम प्रकाश स्रोत्र के तापमान के साथ-साथ बदलता था। मिसाल के लिए बुझने वाला तारा, ठंडा होते समय लाल रंग हो जाएगा। तो अगर 'सिरियस-बी' बुझने की कगार पर था

तो उसका रंग लाल होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं था। 'सिरियस-बी' का प्रकाश एकदम सफेद था।

इसको गहराई से समझने के लिए 'सिरियस-बी' के स्पेक्ट्रम का बहुत सावधानी से अध्ययन करना जरूरी था। पर यह काम बड़ा मुश्किल था। एक ता 'सिरियस-बी' बहुत धुंधला था और दूसरे वो एक बहुत प्रकाशवान तारे 'सिरियस-ए' के बिल्कुल पास था। इसलिए छोटे तारे 'सिरियस-बी' के स्पेक्ट्रम को विस्तार से समझ पाना काफी मुश्किल था।

1915 में अमरीकी खगोलशास्त्री वाल्टर सिडने ऍड्म्स 'सिरियस-बी' के स्पेक्ट्रम को पाने में सफल हुआ। उसने 'सिरियस-बी' के सतही तापमान को 80,000-डिग्री सेल्सियस पाया। वो हमारे सूर्य से कहीं अधिक गर्म था। सूर्य का सतही तापमान मात्र 6,000 डिग्री सेल्सियस होता है।

अगर हमारा सूर्य 'सिरियस-बी' जितनी दूरी पर होता तो वो एक चमकीले तारे की तरह चमकता। वो 'सिरियस-ए' जितना चमकीला तो नहीं होता परन्तु फिर भी वो काफी तेजी से चमकता। पर क्योंकि 'सिरियस-बी' सूर्य से कहीं अधिक गर्म था इसलिए उसे सूर्य से कहीं ज्यादा चमकना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं था। अगर 'सिरियस-बी' सूर्य जितनी दूरी पर होता तो उसकी चमक, सूर्य की तुलना में केवल 1/400 होती।

यह कैसे सम्भव था?

यह तभी सम्भव था जब चमकीले 'सिरियस-बी' की सतह बिल्कुल ही कम रह गई होती। इसका अर्थ है कि 'सिरियस-बी' एक बहुत छोटा तारा होगा।

तापमान बहुत अधिक होने और धुंधले होने के बावजूद 'सिरियस-बी' का व्यास मात्र 11,000 किलोमीटर था। यानि वो सिर्फ एक बड़े ग्रह जितना बड़ा था। अगर 'सिरियस-बी' जैसे 86 तारों को पास-पास रखा जाए ता वे सूर्य की चौड़ाई जितने होते। क्योंकि 'सिरियस-बी' गर्म और सफेद था और बेहद छोटा था इसलिए उसे 'व्हाइट-डुआर्फ' (सफेद-बौना) कहा जाता था। 'प्रोसायन-बी' भी एक 'व्हाइट-डुआर्फ' था।

अब ‘व्हाइट-डुआर्फ’ काफी आसानी से मिलते हैं। खगोलशास्त्रियों के अनुसार हर चालीस तारों में एक तारा ‘व्हाइट-डुआर्फ’ होता है। ‘व्हाइट-डुआर्फ’ बहुत छाटे और धुंधले होते हैं। हम केवल समीप के ही चंद ‘व्हाइट-डुआर्फ’ को ही देख पाते हैं।

बेहद छोटा होने के बावजूद ‘सिरियस-बी’ का भार सूर्य जितना था। अगर ‘सिरियस-बी’ इतना भारी नहीं होता तो वो ‘सिरियस-ए’ के चारों ओर चक्कर नहीं लगा पाता।

अगर सूर्य के पदार्थ को दबाकर उसे ‘सिरियस-बी’ जितना छोटा बनाया जाए तो उसका घनत्व अत्यधिक होगा। (किसी वस्तु का घनत्व इकाई आयतन में मौजूद पदार्थ होता है)।

‘सिरियस-बी’ के 1-घन सेंटीमीटर पदार्थ को अगर पृथ्वी पर लाया जाए तो उसका भार 2,900,000 ग्राम होगा। इसके मतलब ‘सिरियस-बी’ का घनत्व 2,900,000 ग्राम/घन सेंटीमीटर होगा। जबकि पृथ्वी का औसतन घनत्व मात्र साढ़े पांच ग्राम/घन सेंटीमीटर है। इसलिए ‘सिरियस-बी’ का पदार्थ, पृथ्वी के पदार्थ से 5,30,000 गुना ज्यादा भारी था।

यह एक बिल्कुल आश्चर्यचकित करने वाली बात है। पृथ्वी पर ठोस पदार्थ अणुओं के बने होते हैं। यह अणु एक-दूसरे को छूते हैं। 1800 तक वैज्ञानिकों का मत था कि अणु ठोस गेंदों जैसे होते हैं और अगर वो एक-दूसरे को छू रहे हों तो फिर उन्हें और दबाना असम्भव होगा। अगर यह सच था तो पृथ्वी का घनत्व और किसी तारे के घनत्व जितना होता।

1911 में न्यूजीलैन्ड में जन्मे वैज्ञानिक अर्नस्ट रदरफोर्ड ने दिखाया कि अणु सख्त और ठोस नहीं होते हैं। अणुओं का ठोस भाग उसकी नाभि (न्यूक्लियस) में स्थित होता है। और यह नाभि इतनी छोटी होती है कि अगर एक लाख नाभियों को एक-दूसरे से सटाकर रखा जाए तो वो एक अणु की चौड़ाइ जितनी होंगी।

इतनी सूक्ष्म होने के बावजूद अणु का सारा भार उसकी नाभि में केंद्रित होता है।

हरेक नाभि के चारों ओर इलेक्ट्रान होते हैं जिनका भार बहुत कम होता है। इलेक्ट्रानस़ नाभि के चारों ओर परतों में सजे होते हैं जिन्हें इलेक्ट्रान-शैल कहते हैं।

हीलियम की आणविक संरचना

जब दो अणु आपस में मिलते हैं तो एक अणु का इलेक्ट्रान-शैल दूसरे के इलेक्ट्रान-शैल से सम्पर्क में आता है। इलेक्ट्रान-शैल मोटरकार के बम्पर का काम करते हैं और अणओं को एक-दूसरे के बहुत करीब आने से रोकते हैं।
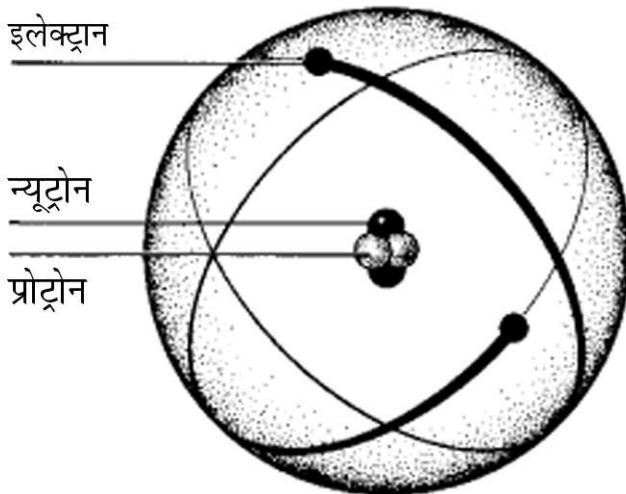
पृथ्वी पर गुरुत्वाकषण का बल इतना शक्तिशाली नहीं होता है। वो इलेक्ट्रान-शैल के बम्परों को तोड़ने में असमर्थ होता है। पृथ्वी के केंद्र में जहां हजारों किलोमीटर मोटी पत्थरों और धातु की परत अणुओं को सभी ओर से दबाती हैं वहां भी अणुओं का इलेक्ट्रान-शैल नहीं टूटता है।

हमारे सूर्य की बात अलग है। सूर्य पृथ्वी से लाखों-करोड़ों गुना ज्यादा भारी है और उसका गुरुत्वाकर्षण बल बहुत शक्तिशाली होता है। इसलिए सूर्य के केंद्र में मौजूद अणुओं के इलेक्ट्रान-शैल ध्वस्त हो जाते हैं। अब इलेक्ट्रांस नाभि से मुक्त होकर इधर-उधर घूम सकते हैं।

इसके परिणाम स्वरूप अब नाभियां भी इधर-उधर मुक्त होकर घूम सकती हैं। अब वो एक-दूसरे से चिपक सकतीं हैं और इस प्रक्रिया द्वारा ऊर्जा पैदा कर सकती हैं। इस प्रक्रिया स उत्पन्न ऊर्जा से तारे के केंद्र का तापमान लाखों-करोंड़ों डिग्री सेल्सियस तक पहुंच सकता है। कुछ ऊष्मा तार की सतह से सभी दिशाओं में लीक होती है और उसके कारण तारा दीप्तीमान होता है - चमकता है। इस ऊष्मा से तारा फैली स्थिति में रहता है और उससे केवल तारे के केंद्र में ही अणु एक-दूसरे से टकराते हैं, अन्य स्थानों पर नहीं।

तारे के केंद्र में निर्माण ऊर्जा हाईड्रोजन की नाभि (सबसे सूक्ष्म) के हीलियम की नाभि में बदलने के कारण पैदा होती है।

पर तब तक तारा बहुत गर्म हो चुका होता है और अतिरिक्त ऊष्मा उसे और फैलाती है और वो एक जायंट-स्टार (दानव-तारा) बन जाता है। इससे तारा की सतह का तापमान ठंडा होता है और उसका रंग लाल हो जाता है। इसलिए ऐसा तारा रेड-जायंट (लाल-दानव) कहलाता है।

जब तारे की सारी हाईड्रोजन समाप्त हो जाती है तो आणविक अग्नि तारे की सबसे बाहरी परत पर आती है। यहां वो एक गैस के रूप में फैलकर अंततः लुप्त हो जाती है। अब अंदर की परतों में (जिनमें तारे का समस्त भार होता है) तारे को गर्म करने के लिए बिल्कुल ऊर्जा नहीं बचती है। गुरुत्वाकर्षण का बल उन परतों को अंदर की ओर खींचता है और तारा ढह (कोलैप्स) जाता है। तारा इतनी तेजी से ढहता है

और गुरुत्व उसे अंदर की ओर इतने प्रबल बल से खींचतो है कि समस्त इलेक्ट्रान-शैल ढह जाते हैं और सारी नाभियां एक-दूसरे के बहुत पास आ जाती हैं।

तब तारे का समस्त भार एक छोटे से आयतन में दब जाता है। तब तारा एक व्हाइट-डुआर्फ (सफेद-बौना) बन जाता है।

हमारे सूर्य के साथ ऐसा 500-करोड़ वर्ष तक नहीं होगा। पर कुछ तारों का हाईड्रोजन ईंधन समाप्त होने की वजह से उनका यही अंत हुआ है। सिरियस-बी और प्रोसायन-बी इसके जीते-जागते उदाहरण हैं।
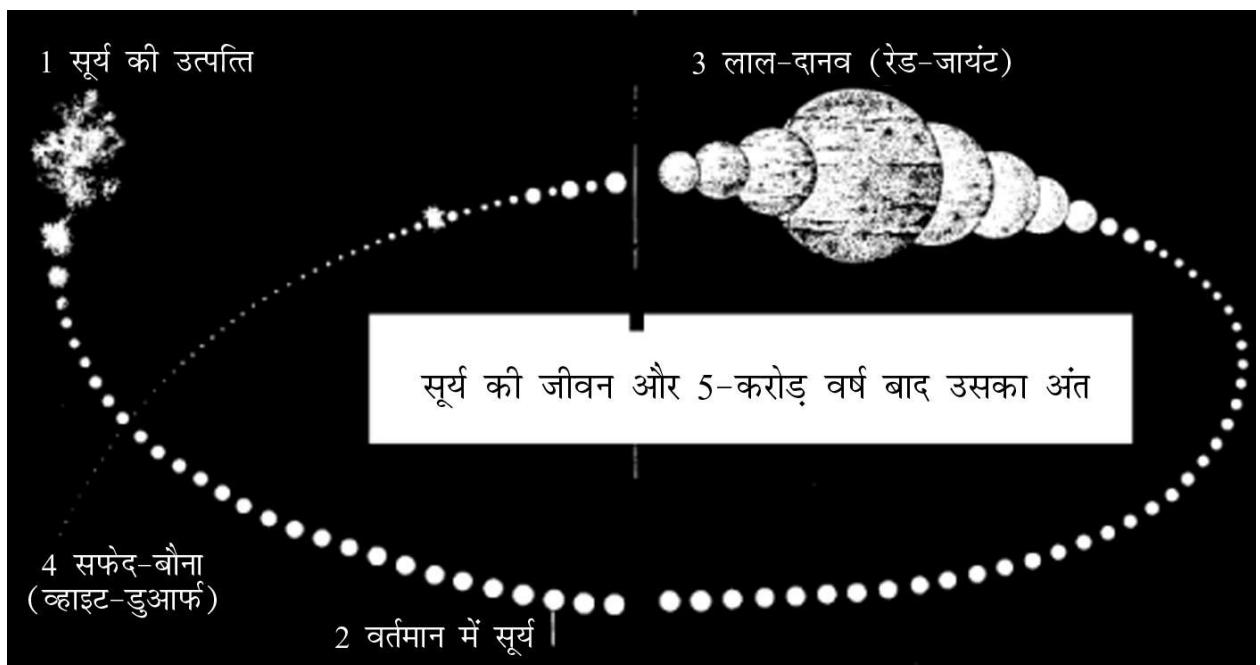
2. सीमाएं और विस्फोट

जैसे ही आप किसी पिंड के केंद्र के पास आते हैं वैसे-वैसे गुरुत्व का बल और प्रबल होता जाता ह। पर इसके लिए यह जरूरी है कि आप पिंड के बाहर हों।

कल्पना करें कि आप सूर्य पर खड़े हैं। वहां पर गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी से 28-गुना अधिक होगा। अगर सूर्य के सारे पदार्थ को और कसकर दबाया जाए और तो सूर्य लगातार सिकुड़ेगा और आप सूर्य के केंद्र के करीब, आर करीब आएंगे। इससे गुरुत्वाकर्षण का बल और शक्तिशाली होगा।

सूर्य की सतह पर खड़े होने से आप उसके केंद्र से 695,200-किलोमीटर की दूरी पर होंगे। सिरियस-बी की सतह पर भी वही भार होगा पर आप केंद्र से मात्र 24,000-किलोमीटर की दूरी पर होंगे। इसलिए सिरियस-बी की सतह पर खड़े होकर आप गुरुत्वाकर्षण बल को सूर्य की अपेक्षा 840-गुना अधिक महसूस करेंगे। और पृथ्वी की अपेक्षा यह गुरुत्वाकर्षण बल 23,500-गुना अधिक होगा।

हम इसे सिद्ध कैसे करें? हम कैसे पता करें कि सिरियस-बी का घनत्व इतना अधिक है?

1915 में जर्मन वैज्ञानिक एल्बर्ट आइंस्टीन ने गुरुत्वाकर्षण का एक नया सिद्धांत रचा। उनके अनुसार जब प्रकाश किरण किसी गुरुत्व बल के पास से गुजरती है तो उसकी सभी तरंग-लम्बाईयां कुछ खिंच कर लम्बी हो जाती हैं। जितना अधिक गुरुत्व बल होता है उतनी ज्यादा तरंग-लम्बाईयां खिंचती हैं।

प्रकाश को सबसे लम्बी तरंगें लाल रंग की होती हैं। इसका अर्थ होता है कि जैसे-जैसे प्रकाश तरंगें लम्बी होती हैं वे ज्यादा लाल होती जाती हैं। इसका मतलब है कि वो वर्णक्रम में लाल की ओर झुकती हैं। आइंस्टीन ने प्रकाश के गुरुत्व द्वारा लाल वर्णक्रम की ओर झुकने की भविष्यवाणी की थी।

वैसे सूर्य की गुरुत्वाकर्षण शक्ति पृथ्वी से कई गुना ज्यादा है फिर भी वो बहुत शक्तिशाली नहीं है और उससे केवल थोड़ी सी रेड-शिफ्ट सम्भव है। इस छोटी रेड-शिफ्ट को मापना बहुत मुश्किल है। सिरियस-बी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति बहुत अधिक है। क्या सिरियस-बी की रेड-शिफ्ट को मापना सम्भव होगा?

1925 में ऍडमस - जिसने सबसे पहले सिरियस-बी के वर्णक्रम का अध्ययन किया था, ने दुबारा उसको जांचा। उसने आइंस्टीन की भविष्यवाणी के अनुसार

सिरियस-बी के वर्णक्रम में रेड-शिफ्ट पाई। सिरियस-बी का गुरुत्वाकर्षण बल वाकई में बहुत शक्तिशाली था।

यह सिरियस-बी के बेहद छोटे और सघन होने का निर्णायक प्रमाण था। अगर सिरियस-बी की यह स्थिति थी तो फिर 'व्हाइट-डुआर्फस' की क्या हालत थी? आने वाले दूर के भविष्य में हमारे सूर्य की भी वही स्थिति होगी।

पर अगर तारे के ढहने के साथ-साथ गुरुत्व बल और प्रबल होता है तो फिर तारे को पूरी तरह ढहने से कौन रोकता है और फिर 'व्हाइट-डुआर्फस' का निर्माण कैसे होता है? तारा पूरी तरह क्यों नही ढहता?

अणुओं के विखंडन के बाद और इलेक्ट्रान-शैल के ध्वस्त होने के बाद भी इलेक्ट्रान बचते हैं। वो अपनी नाभियों से कहीं अधिक स्थान घेरते हैं और तारे को और अधिक सिकुड़ने से बचाते हैं।

जितना भारी तारा होता है उसमें पदार्थ उतना ही अधिक ठूंस-ठूंस के भरा होता है और उसका गुरुत्व-बल भी उतना ही अधिक होता है। जो 'व्हाइट-डुआर्फस' सिरियस-बी से बड़ा होगा वो खुद को सिकोड़ेगा और सिरियस-बी से छोटा बन जाएगा।

अगर 'व्हाइट-डुआर्फस' बहुत विशाल होगा तब क्या होगा?

1931 में भारतीय-अमरीकी खगोलशास्त्री सुब्रामनियन चंद्रशेखर ने इस प्रश्न का अध्ययन किया। उन्होंन दिखाया कि अगर 'व्हाइट-डुआर्फ' बड़ा होगा तो वो इलेक्ट्रांस के अवरोध पर काबू पा लेगा। इससे तारा और ढहेगा।

उन्हांने गणना की कि 'व्हाइट-डुआर्फ' का साइज (माप) कितना हो जिससे कि वो आगे ढह सके। इसके लिए तारा हमारे सूर्य के माप से 1.4-गुना बड़ा होना जरूरी है। इसे 'चंद्रशेखर-सीमा' के नाम से जाना जाता है।

अभी तक खगोलशास्त्रियों को जितने भी 'व्हाइट-डुआर्फस' मिले हैं उन सभी के भार 'चंद्रशेखर-सीमा' से कम हैं।

इससे एक समस्या उत्पन्न होती है।

अगर सभी तारों को भार शुरू में हमारे सूर्य से 1.4-गुना कम होगा तो सभी घटनाओं को अच्छी तरह समझाया जा सकता है। तब सभी तारे हमारे सूर्य जैसे

'व्हाइट-डुआर्फस' बन जाएंगे। समस्या तब पैदा होगी जब कुछ तारों का भार उससे अधिक होगा। अंतरिक्ष में करीब 2.5 प्रतिशत तारे ऐसे हैं जिनका भार सूर्य के भार से 1.4 -गुना अधिक है। वैसे यह प्रतिशत बहुत अधिक नहीं ह। परन्तु बृहमांड में इतने अधिक तारे हैं इसलिए उनकी 2.5 प्रतिशत संख्या बहुत अधिक हो जाती है।

हमारा बृहमांड गैलेक्सियों (आकाशगंगाओं) में बंटा है। हमारी खुद की आकाशगंगा में 1200-करोड़ तारे हैं। इसका मतलब वहां 30-करोड़ ऐसे तारे भी हैं जिनका भार 'चंद्रशेखर-सीमा' से अधिक है।

एक ही भार के अलग-अलग तारे
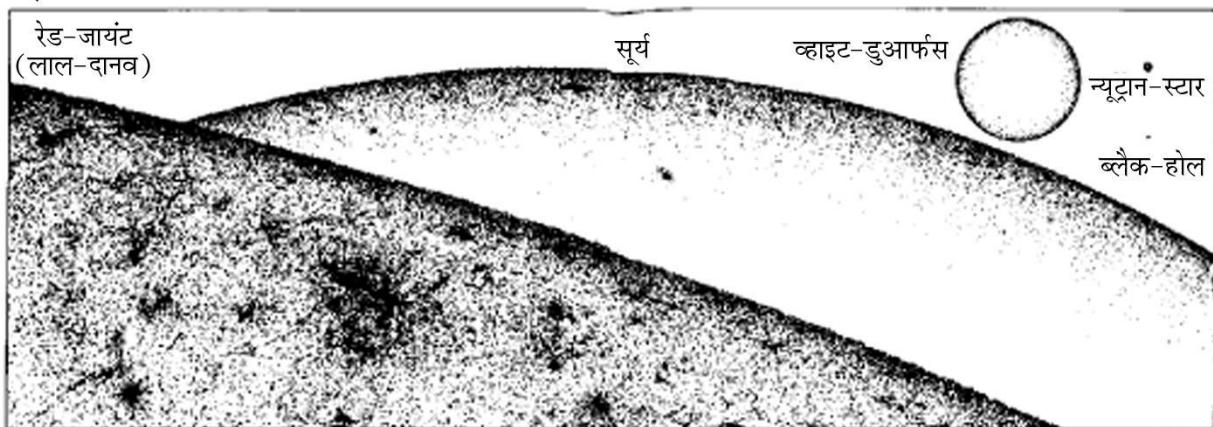
उन तारों का क्या हश्र होगा?

खगोलशास्त्रियों ने अध्ययन के बाद पाया कि जितना विशाल तारा होगा उतना ही तूफानी और अल्प उसका जीवन होगा।

जितना विशाल तारा होता है उतनी ही अधिक शक्ति से गुरुत्व-बल उसे अंदर खींचेंगा और ढहने से बचने के लिए उसे अत्यधिक गर्म रहना पड़गा। और तारा जितना अधिक गर्म होगा उसका हाईड्रोजन-ईंधन उतनी ही जल्दी खत्म होगा। इसी कारणवश बड़े-भारी तारों का, छोटे-हल्के तारों की अपेक्षा जीवनकाल छोटा होता है।

सूर्य जैसे विशाल तारे को अपना ईंधन खच करने में 1000-करोड़ वर्ष लगेंगे। पर सूर्य से तीन-गुना भारी तारा अपने ईंधन को मात्र 50-करोड़ वर्ष में खर्च कर डालेगा।

इसी वजह से बहुत विशाल और बड़े तारों की संख्या इतनी कम है। वे बहुत लम्बे अर्से तक नहीं टिकते हैं।

एक बात और है। जितना विशाल तारा होगा, वो रेड-जायंट बनने के लिए जितनी तेजी से फैलेगा उसकी ईंधन खत्म होने पर वो उतनी ही तेजो से ढहेगा भी। जब तारा बहुत तेजी से ढहता है तो उसमें विस्फोट होता है। जितना विशाल-भारी तारा होता है, विस्फोट भी उतना ही भयानक होता है। जब तारे में विस्फोट होता है तो उसकी बाहरी परतों में मौजूद सारा हाईड्रोजन-ईंधन खर्च हो जाता है। यह बहुत तेजी से होता है और तारा अपनी सामान्य चमक से 10,000-करोड़ गुना तेजी से दीप्तीमान होता है। और यह असीमित चमक कई हफ्तों तक बनी रह सकती है।

इस तरह एक धुंधला तारा, जिसे पहले केवल टेलिस्कोप की मदद से ही देखा जा सकता था, अचानक इतना दीप्तीमान हो जाता है कि उसे सिर्फ आंख से देखना सम्भव हो जाता है। प्राचीन काल में टेलिस्कोप के इजाद से पूर्व जब कभी ऐसा होता था तो खगोलशास्त्रियों को लगता था जैसे आसमान में एक नए तारे ने जन्म लिया हो। ऐसा तारा 'नोवा' कहलाता था। लैटिन में इसका अर्थ 'नया' होता है।

कुछ 'नोवा' चकाचौंध करके नहीं चमकते हैं। यह तब होता है जब उस पर कोई अन्य तारा गिरता है और चमकता है। बहुत विशाल तारों के विस्फोट 'सुपर-नोवा' को जन्म देते हैं।

'चंद्रशेखर-सीमा' से उत्पन्न समस्या का अब हल मिल गया था। जब कोई तारा 'सुपर-नोवा' में बदलता है तो विस्फोट से उसका अधिकांश पदार्थ बाहरी बृहमांड में उड़कर चला जाता है। तारे में अब बहुत कम ही पदार्थ बचता है जो ढह जाता है।

जब किसी विशाल तारे में विस्फोट होता है तो इतना अधिक पदार्थ बाहरी बृहमांड में उड़ जाता है कि जो बचता है वो अक्सर 'चंद्रशेखर-सीमा' के भार से कम होता है।

अगर यह सच है तो इसका अर्थ होगा कि चाहें कितना भी विशाल तारे क्यों न हो अंततः वो कम या बड़े 'व्हाइट-डुआर्फ' में बदलेगा।

3. पल्सर और न्यूट्रान-स्टार

'चंद्रशेखर-सीमा' के उल्लंघन से बचने के लिए 'सुपर-नोवा' की कल्पना से सब खगोलशास्त्री खुश नहीं थे।

बड़े विशाल तारों का विस्फोट के समय क्या होगा, इस विषय पर कुछ लाग मनन-चिंतन करने लगे। उन्हें लगा कि उन तारों का सिर्फ एक निश्चित भार ही बाहरी अंतरिक्ष में फेंका जाना सम्भव है और उससे वो तारा 'चंद्रशेखर-सीमा' के नीचे नहों आएगा। उन्हें लगा कि 'सुपर-नोवा' विस्फोट के दौरान कोई भी तारा अपने भार का 90-प्रतिशत से ज्यादा भार नहीं फेंक पाएगा। इसलिए तारा अगर सूर्य से 15-गुना भारी भी होगा तो सिकुड़ने के बाद उसका भार 'चंद्रशेखर-सीमा' से अधिक होगा।

और विशाल तारों में ढहने की गति इतनी तेज होगी कि अगर ढहने वाले भाग का भार 'चंद्रशेखर-सीमा' से कम भी हो तो भी सिकुड़ते समय उसके सब इलेक्ट्रांस ध्वस्त हो जाएंगे। तब क्या होगा?

1934 में स्विज-अमरीकी खगोलशास्त्री फ्रिट्स ज्वीकी और जर्मन-अमरीकी खगोलशास्त्री वाल्टर बाडे ने इस समस्या पर विचार किया। उन्हें कुछ-कुछ ऐसा लगा - किसी भी अणु की नाभि में दो प्रकार के कण होते हैं - प्रोट्रान और न्यूट्रान। दोनों बहुत कुछ एक-समान होते हैं। फर्क इतना होता है कि प्रोट्रान में आवेश होता है और न्यूट्रान में नहीं।

साधारण अणुओं के बाहर भी इलेक्ट्रान होते हैं और 'व्हाइट-डुआर्फस' के ध्वस्त अणुओं में भी आवेश (चार्ज) होता है।

इलेक्ट्रान पर विद्युत आवेश की मात्रा बिल्कुल प्रोट्रान जितनी ही होती है। फर्क इतना है कि दोनों पर भिन्न आवेश होते हैं। प्रोट्रान पर 'घन' विद्युत आवेश होता है और इलेक्ट्रान पर (ऋण) आवेश होता है। अगर इलेक्ट्रान और प्रोट्रान को जबरदस्ती जोड़ा जाए तो दोनों आवेश एक-दूसरे का खात्मा कर देते हैं। और तब सिर्फ आवेश-विहीन न्यूट्रान बचता है।

ज्वीकी और बाडे को लगा कि अगर ढहते तारे का भार 'चंद्रशेखर-सीमा' से अधिक हो, और अगर ढहने की गति बहुत तीव्र हो तो फिर सारे इलेक्ट्रान, नाभि में चले जाएंगे। तब नाभि में मौजूद प्रोट्रान, न्यूट्रान में परिवर्तित हा जाएंगे। तब ढहते तारे में सिर्फ न्यूट्रान ही बचेंगे।

इलेक्ट्रान के अभाव में न्यूट्रान एक-दूसरे के पास आएंगे और वे अंत में एक-दूसरे को छुएंगे। इस स्थिति में ढहने वाला तारा 'न्यूट्रान-स्टार' बन जाएगा।
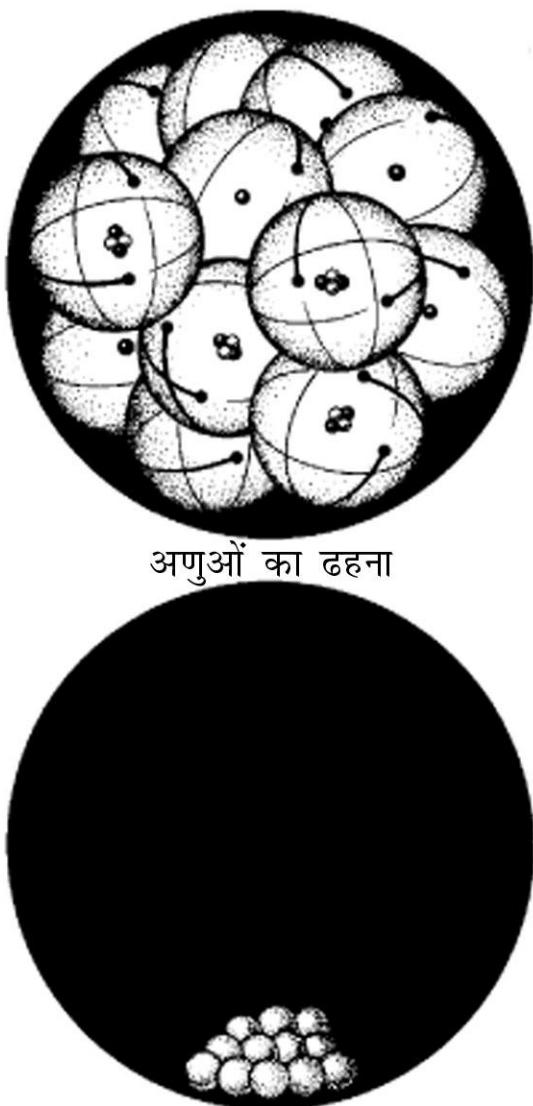
अणुओं का ढहना

न्यूट्रान क्योंकि अणुओं की अपेक्षा बहुत सूक्ष्म होते हैं इसलिए 'न्यूट्रान-स्टार' भी बहुत छोटा होगा। मिसाल के लिए हमारा सूर्य गर्म गैसों की एक गेंद है जिसका व्यास 1,390,400-किलोमीटर है। अगर उसके सभी इलेक्ट्रान और प्रोट्रान, न्यूट्रान में परिवर्तित हो जाएं, और वो सिकुड़े जिससे न्यूट्रान आपस में छुएं तो फिर वो खुद एक 'न्यूट्रान-स्टार' बन जाएगा जिसका व्यास मात्र 6-किलोमीटर होगा। पर उसका भार अभी भी सूर्य जितना ही होगा।

ज्वीकी और बाडे को लगा कि 'व्हाइट-डुआर्फस' केवल उन्हीं तारों से बनेंगे जिनका आकार 'सुपर-नोवा' जैसे विस्फोट के लिए बहुत छोटा होगा। जो बड़े तारे 'सपर-नोवा' की स्थिति से गुजरेंगे वो अंत में 'न्यूट्रान-स्टार' जैसे ढहेंगे। (हमारा सूर्य बहुत छोटा होने के कारण उसमें विस्फोट नहीं होगा। भविष्य में वो कभी ढह कर 'व्हाइट-डुआर्फस' बनेगा परन्तु 'न्यूट्रान-स्टार' नहीं बनेगा।

पर अगर कोई 'न्यूट्रान-स्टार' मात्र कुछ ही किलोमीटर व्यास का हो तो हम ज्वीकी और बाडे के सिद्धांतों की पुष्टि कैसे कर सकते हैं? दुनिया के सबसे सशक्त टेलिस्कोपों से भी करोड़ों-खरबों किलोमीटर दूर, चंद किलोमीटर व्यास का पिंड नजर नहीं आएगा।

इसका बस एक ही तरीका था। जब कोई बड़ा तारा ढह कर 'न्यूट्रान-स्टार' बनता है तो उसके ढहने की ऊर्जा ऊष्मा में परिवर्तित होती है। इसलिए 'न्यूट्रान-स्टार' का सतही तापमान 1-करोड़ डिग्री सेल्सियस होगा। यानि वो हमारे सूर्य के केंद्र जितना गर्म होगा।

जिस सतह का तापमान 1-करोड़ डिग्री सेल्सियस होगा वहां से साधारण प्रकाश निकलने की सम्भावना बहुत कम होगी। उसका विकिरण प्रकाश जैसा ही होगा परन्तु उसमें बहुत अधिक ऊर्जा होगी। और अगर उन किरणों में अत्यधिक ऊर्जा होगी तो उनकी तरंग-लम्बाई बहुत कम होगी। इसलिए 'न्यूट्रान-स्टार' से निकली किरणें बहुत कम तरंग-लम्बाई की होती हैं। कम तरंग-लम्बाई की इन किरणों को हम 'एक्स-रे' बुलाते हैं।

कोई भी 'न्यूट्रान-स्टार' सभी तरंग-लम्बाईयों की किरणें विकिरित करेगा। इसमें साधारण प्रकाश की किरणों के साथ-साथ लम्बी वेवलेंथ की रेडियो-किरणें भी होंगी। और उनके साथ-साथ 'एक्स-रे' भी होंगी।

अगर हम बृहमांड के अलग-अलग भागों से आई 'एक्स-रे' का अध्ययन करें तो हमें अंतरिक्ष में 'न्यूट्रान-स्टार्स' की स्थिति मालूम पड़ेगी। बस इसमें एक दिक्कत है। साधारण प्रकाश-किरणें वातावरण में आसानी से गुजर सकती हैं। पर 'एक्स-रे' वातावरण में आसानी से नहीं गुजरती हैं।

भाग्यवश 1950 के बाद से वैज्ञानिक, पृथ्वी के वातावरण से दूर अंतरिक्ष में रॉकेट भेजने में सफल हुए। इन रॉकेट्स में उन्होंने वो यंत्र फिट किए जो अंतरिक्ष में विकिरण का अध्ययन कर सकें।

1963 में अमरीकी खगोलशास्त्री हर्बट फ्राइडमैन के नेतृत्व में रांकेट के साथ वो यंत्र भेजे गए जो अंतरिक्ष में 'एक्स-रे' का अध्ययन कर सकें। आसमान में 'एक्स-रे'

कई दिशाओं से आती हुई मिलीं। पर क्या वो केवल 'न्यूट्रान-स्टार्स' से आ रही थीं या फिर अन्य पिंडों से?
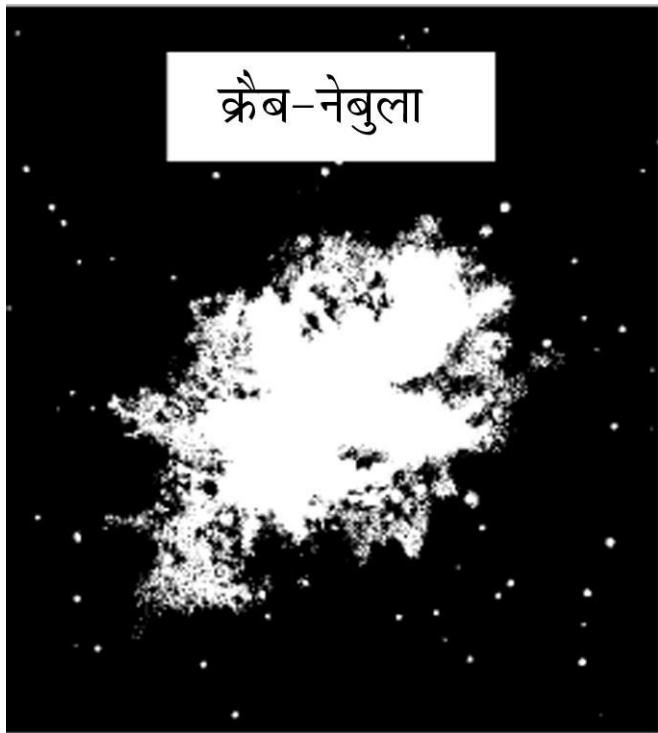
क्रैब-नेबुला एक स्थान था जहां से 'एक्स-रे' आ रहीं थीं। क्रब-नेबुला धूल और गैस का बादल है जो सन 1054 में फटे 'सुपर-नोवा' का अवशेष है। क्या उसके बीच में कोई 'न्यूट्रान-स्टार' छिपा हो सकता था?

इसे पक्के तौर पर कहना मुश्किल था। 'एक्स-रे' गर्म धूल और गैस के बादल में से आ सकती थीं। हो सकता है कि उसमें कोई 'न्यूट्रान-स्टार' न हो?

1964 में चंद्रमा, क्रैब-नेबुला के सामने से होकर गुजरा। अगर 'एक्स-रे' गर्म धूल और गैस के बादल में से आ रही होतीं तो चंद्रमा को उन्हें काटने में थोड़ा समय लगता और वे धीरे-धीरे करके कम होतीं। पर 'एक्स-रे' किसी छोटे 'न्यूट्रान-स्टार' से आ रही होतीं तो वो तुरन्त कट जातीं।

पर 'एक्स-रे' धीरे-धीरे करके कम हुईं और वहां कोई 'न्यूट्रान-स्टार' नहीं मिला।

पर कहानी यहीं खत्म नहीं होती। 1931 में अमरीकी इंजीनियर कार्ल जैन्सकी को अंतरिक्ष से 'रेडियो-वेव्ज' आती मिलीं। 'रेडियो-वेव्ज' वैसे प्रकाश किरणों जैसी ही होती हैं पर उनसे बहुत लम्बी होती हैं। वे प्रकाश किरणों जैसे ही वातावरण में से आसानी से गुजर सकती हैं। जैन्सकी ने इसी प्रकार की 'रेडियो-वेव्ज' खोजीं।

1950 में खगोलशास्त्रियों ने इन 'रेडियो-तरंगों' के अध्ययन के लिए रेडियो टेलिस्कोप बनाए।

1960 तक खगोलशास्त्रियों को लगा कि 'रेडियो-तरंगे' बहुत जल्दी तेज और कमजोर होती हैं। वो इतनी जल्दी-जल्दी तेज / कमजोर होतीं यानि स्पन्दन करती हैं कि रेडियो टेलिस्कोप उन्हें पकड़ नहीं पाते।

1967 में ब्रिटिश खगोलशास्त्री एंड्रू हवीइश ने उन तेजी से स्पन्द करती 'रेडियो-तरंगों' को पकड़ने के लिए एक विशेष रेडियो टेलिस्कोप बनाया।

जुलाई 1967 में इस रेडियो टेलिस्कोप की स्थापना हुई और एक महीने के अंदर ही हवीइश की छात्र जोसिलिन बेल रेडियो-तरंगों की 'पल्सों' (स्पन्दनों) को पकड़ने में सफल हुईं। हरेक पल्स केवल 1/20 सेकंड तक ही रहती। और ऐसी पल्स प्रत्येक 1.37730109-सेकंड पर आतीं। वो अपने समय की पक्की होती हैं और इस क्रम में कोई बदलाव नहीं होता।

हवीइश और जोसिलिन बेल को आसमान में तीन स्थानों से तेजी से रेडियो-तरंगों की 'पल्स' आती हुई दिखीं। हरेक का काल अलग-अलग था। इन 'पल्सों' का कारण उन्हें पता नहीं था इसलिए उन्होंने उनका नाम 'पल्सेटिंग-स्टार' रखा। बाद में उन्हें संक्षिप्त में 'पल्सर' बुलाया गया।

इस बीच अन्य खगोलशास्त्रियों ने भी पल्सर खोजे। दस सालों में करीब 100 पल्सर खोजे गए। हमारी आकाशगंगा में ही उनकी संख्या शायद एक-लाख से ऊपर हो।

क्रैब-नेबुला में पाए पल्सर का समय-काल (पीरियड) सबसे कम था। वहां से हरेक 0.033099-सेकंड पर एक पल्स आती थी। यानि हरेक 1/30 सेकंड में एक पल्स आती थी।

आस्ट्रिया में जन्में खगोलशास्त्री थामस गोल्ड को लगा कि यह पल्स अंतरिक्ष में किसी ऐसे पिंड से आती होगीं जो बहुत तेज और नियमित रूप से बदल रहा हो। दो-पिंड एक-दूसरे के चारों ओर घूम रहे हों, या कोई पिंड तेजी से फैल / सिकुड़ रहा हो, या फिर अपनी अक्ष पर घूम रहा हो।
इसमें एक समस्या थी। उन शक्तिशाली रेडियो तरंगों को जो करोड़ों-खरबों किलोमीटर दूर से आ रही थीं के लिए एक विशाल तारे की जरूरत थी।

परन्तु साधारण तारों का इतनी तेज गति से चलना असम्भव था। तारे, एक-दूसरे के चारों ओर हर सेकंड न तो घूम सकते थे न ही फैल सकते थे। अगर तारे इतनी गति से कार्य करते तो उनकी धज्जियां उड़ जातीं। इतने तेज परिवर्तन के लिए तारे से कहीं छोटे पिंड की जरूरत थी। साथ में उसका गुरुत्वकार्षण बल बहुत शक्तिशाली होना आवश्यक था। इसके लिए 'व्हाइट-डुआर्फ' भी पर्याप्त छोटे नहीं थे और उनका गुरुत्वकार्षण बल भो इतना शक्तिशाली नहीं था।

क्या इसके लिए 'न्यूट्रान-स्टार' उपयुक्त होगा? गोल्ड को यही सम्भावना सबसे उपयुक्त लगी। 'न्यूट्रान-स्टार' बेहद छोटा होता है और उसका गुरुत्वकार्षण बल भी बेहद शक्तिशाली होता है। वो अपने अक्ष पर एक सेकंड के अंदर घूम सकता है - शायद वो बिना टूटे 1/30 सेकंड में घूम सकता है।

गोल्ड ने सुझाव दिया कि रेडियो-वेव्ज शायद 'न्यूट्रान-स्टार' की सतह के किसी विशिष्ट भाग से ही आती हों। जैसे ही 'न्यूट्रान-स्टार' घूमता है वैसे ही रेडियो-वेव्ज की एक बौछार (पल्स) हमारी ओर आती है।

गोल्ड इस निर्णय पर भी पहुंचा कि विकिरण भेजते समय 'न्यूट्रान-स्टार' की ऊर्जा धीरे-धीरे कम होती होगी। और इससे उसके घूमने की गति धीरे-धीरे करके धीमी होगी।

क्रैब-नेबुला का पल्सर इतनी तेज गति से चक्कर इसलिए लगाता है क्योंकि वो 'न्यूट्रान-स्टार' सिर्फ 1,000 साल पहले ही बना है और हमारी जानकारी में सबसे युवा पल्सर है। बहुत नया होने के कारण उसे अभी धीमे होने का वक्त ही नहीं मिला है। पर समय के साथ उसकी गति भी धीमी पड़ जाएगी।

उसके बाद क्रैब-नेबुला के पल्सर का गहन अध्ययन हुआ और गोल्ड का मत सही पाया गया। प्रत्येक दिन उसका 'पीरियड' थोड़ा सा बढ़ रहा था। उसका 'पीरियड' रोजाना एक बटा 3600-करोड़ सेकंड धीमा हो रहा था।

वैसे कोई घूमता 'न्यूट्रान-स्टार' रेडियो-वेव्ज के साथ-साथ अन्स प्रकार के विकिरण भी भेजेगा। उदाहरण के लिए क्रैब-नेबुला का 'न्यूट्रान-स्टार' एक्स-रे भी भेजता है। क्रैब-नेबुला की 1/8 एक्स-रे उसके 'न्यूट्रान-स्टार' से आती हैं। बाकी 7/8 क्रैब-नेबुला की एक्स-रे पास के सुपर-नोवा की धूल और गैस से आती है। जब

क्रैब-नेबुला से चंद्रमा को ढंका, तो इन 7/8 एक्स-रे के कारण ही लोगों को लगा कि जैसे उसके अंदर कोई 'न्यूट्रान-स्टार' नहीं है।

घूमते 'न्यूट्रान-स्टार' को प्रकाश की किरणें भी भेजनी चाहिए। जनवरी 1969 में क्रैब-नेबुला के अंदर एक धुंधला तारा एक सेकंड में 30 बार घूमता नजर आया। वो लगातार प्रकाश की पल्स भेज रहा था। वो असल में एक 'न्यूट्रान-स्टार' था और खगोलशास्त्री उसे साफ देख सकते थे।

एक अन्य सुपर-नोवा का मलबा दूसरा 'न्यूट्रान-स्टार' पाया गया। इस दूसरे 'न्यूट्रान-स्टार' का नाम था 'वेला एक्स-1' क्योंकि वो 'वेला' नाम के नक्षत्र में था। 'वेला' का मतलब 'नाव की पाल' होता है।

1975 में 'वेला' का भार मापा गया। उसका भार अपने सूर्य का डेढ़-गुना था।

'वेला एक्स-1' का भार चंद्रशेखर-सीमा से ऊपर था। उसके 'न्यूट्रान-स्टार' होने का यह एक और प्रमाण था। कोई पिंड जिसका भार 'वेला एक्स-1' जितना हो वो कभी भी 'व्हाइट-डुआर्फ' नहीं हो सकता था।

4. पलायन गति और ज्वार-भाटा

'व्हाइट-डुआर्फ' बहुत सघन होता है और उसका गुरुत्वकार्षण बल भी बहुत शक्तिशाली होता है पर 'न्यूट्रान-स्टार' उससे कहीं अधिक सघन होता है और गुरुत्व बल भी बहुत प्रबल होता है।

पुस्तक में मैंने पहले उल्लेख किया था कि सिरियस-बी के 1-घन-सेंटीमीटर पदार्थ का भार 34,000-ग्राम होगा। अब हम 'न्यूट्रान-स्टार' के भार की तुलना सिरियस-बी या सूर्य के पदार्थ से करेंगे। 'न्यूट्रान-स्टार' के 1-घन-सेंटीमीटर पदार्थ का भार 155-करोड़ टन होगा। 'न्यूट्रान-स्टार' के 1-घन-किलोमीटर पदार्थ का भार पूरी पृथ्वी के भार का एक-हजार गुना होगा।

मान लें आपका भार 50-किलोग्राम है। अगर आप सूर्य पर खड़े होंगे तो आपका भार 1400-किलो होगा। सिरियस-बी पर 1060-टन होगा। और सूर्य जितने भार वाले 'न्यूट्रान-स्टार' पर आपका भार 1400-करोड़ टन होगा।

शक्तिशाली गुरुत्वकार्षण बल का यह अर्थ नहीं ह कि आप वहां से निकल नहीं पाएंगे। अगर आप पर्याप्त तेज गति से यात्रा करें तो आप बड़े पिंड से भी निकल पाएंगे। इसका कारण है कि गुरुत्वकार्षण खिंचाव दूरी के साथ-साथ कम होता है।

जैसे-जैसे वस्तु पृथ्वी से दूर जाती है, वैसे-वैसे पृथ्वी का गुरुत्वकार्षण बल उसे धीमा करता है और फिर उसे वापस खींचता है। पर अगर कोई वस्तु बहुत तेज गति से बाहर जाती है तो पृथ्वी का गुरुत्वकार्षण बल फिर उसे वापस नहीं खींच पाता है। फिर वो वस्तु बाहर की ओर चलती जाती है और पृथ्वी पर कभी वापस नहीं आती है। पृथ्वी से बाहर जाने की इस स्पीड को 'एस्केप-विलौसिटी' अथवा 'पलायन-गति' कहते हैं।

पृथ्वी की 'पलायन-गति' 11-किलोमीटर प्रति सेकंड है। कोई भी रॉकेट जो 11-किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से ऊपर जाएगा वो पृथ्वी पर कभी वापस नहीं गिरेगा।

पृथ्वी की 'पलायन-गति' ज्यादा है, पर बहुत अधिक नहीं है। हम पृथ्वी से अंतरिक्ष में रॉकेट भेज पाते हैं। बड़ें पिंडों को पृथ्वी से बाहर जाने में जरूर दिक्कत होगी।

जुपिटर पृथ्वी से बड़ा ग्रह है और गुरुत्वकार्षण बल ज्यादा शक्तिशाली है। जुपिटर की 'पलायन-गति' 60.5-किलोमीटर प्रति सेकंड है और सिरियस-बी की 'पलायन-गति' 34,000-किलामीटर प्रति सेकंड है।

सूर्य के भार जितने बड़े 'न्यूट्रान-स्टार' की 'पलायन-गति' 192,360-किलोमीटर प्रति सेकंड होगी। इस वजह से किसी भी वस्तु का 'न्यूट्रान-स्टार' की गिरफ्त से निकल पाना असम्भव होगा।

पर प्रकाश की गति 293,346-किलोमीटर प्रति सेकंड होती है। विकिरण में अन्य तरंगे भी होती हैं जिनकी तरंग-लम्बाईयां प्रकाश से कुछ छोटी-बड़ी होती हैं। रेडियो-तरंगे पलायन कर 'न्यूट्रान-स्टार' को खोज सकती हैं।

अगर आप किसी खगोलीय पिंड से अपनी दूरी को दुगना करते हैं तो उससे गुरुत्वकार्षण बल एक-चौथाई हो जाता है। सूर्य की सतह पर आप उसके केंद्र से 695,200-किलोमीटर की दूरी पर होंगे। अगर आप अंतरिक्ष में 695,200-किलोमीटर

और दूर चले जाएंगे तो सूर्य के केंद्र से आपकी दूरी दोगुनी हो जाएगी और गुरुत्वकार्षण बल सतह की अपेक्षा एक-चौथाई हो जाएगा।

'न्यूट्रान-स्टार' की सतह पर आप उसके केंद्र से मात्र 8-किलोमीटर दूर होंगे। सतह से 8-किलोमीटर और दूर जाने पर गुरुत्वकार्षण बल सतह की अपेक्षा एक-चौथाई हो जाएगा। इसलिए 'न्यूट्रान-स्टार' का गुरुत्वकार्षण बल दूरी के साथ बहुत तेजी से कम होता है।
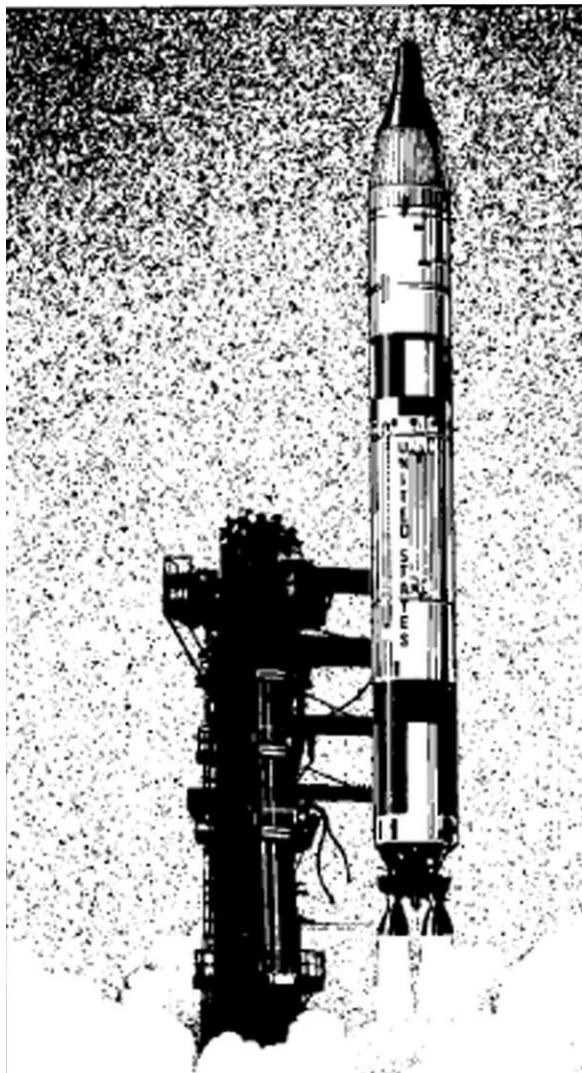
जेमिनी रॉकेट-3 का लांच

कल्पना करें कि आप एक 'न्यूट्रान-स्टार' के बहुत समीप हैं और आपके पैर उसके केंद्र की ओर इंगित हैं। क्योंकि 'न्यूट्रान-स्टार' का गुरुत्वकार्षण बल दूरी के साथ बहुत तेजी से कम होता है, इसलिए आपके सिर से पैर की दूरी के बीच में गुरुत्वकार्षण बल में बदल काफी उल्लेखनीय होगी। क्योंकि सिर और पैर पर अलग-अलग और प्रबल बल लग रहे होंगे इसलिए आप जबरदस्त बल से खींचे जाएंगे।

इस खिंचाव को 'ज्वार-भाटा' या 'टाइडिल' प्रभाव कहते हैं। अगर पिंड बहुत बड़ा हो तो इस खिंचाव को कमजोर गुरुत्वकार्षण बल के समय भी अनुभव किया जा सकता है। मिसाल के लिए चंद्रमा का गुरुत्वकार्षण बल पृथ्वी को कुछ खींचता है। इससे पृथ्वी पर चंद्रमा की तरफ समुद्र का पानी थोड़ा उभरता है। इन्हें हम 'ज्वार-भाटा' या 'टाइडिल' प्रभाव कहते हैं।

5. सम्पूर्ण ढहना

'न्यूट्रान-स्टार' कितना बड़ा या विशाल हो सकता है? वो जितना बड़ा होगा उतना ही शक्तिशाली उसका आंतरिक गुरुत्वकार्षण बल होगा। बहुत शक्तिशाली गुरुत्वकार्षण बल से कहीं 'न्यूट्रान-स्टार' के न्यूट्रान ध्वस्त तो नहीं हो जाएंगे? क्या न्यूट्रान हरेक बल को झेल पाएंगे?

इस प्रश्न पर 1939 में सबसे पहले अमरीकी भौतिकशास्त्री जे राबर्ट औपिनहाइमर ने गहराई से सोचा। उन्हें लगा कि न्यूट्रान हरेक बल को नहीं झेल पाएंगे।

अगर ढहने वाले पिंड का भार सूर्य के भार से 3.2-गुना ज्यादा होगा तो वो ढहते समय वो इलेक्ट्रांस के साथ-साथ न्यूट्रांस को भी ध्वस्त करेगा।

और न्यूट्रांस के ध्वस्त होने के बाद फिर कुछ भी नहीं बचगा और फिर पिंड को पूरी तरह कोलैप्स होने यानि ध्वस्त होने के कोई नहीं रोक पाएगा।

अगर सूर्य के ही भार का पिंड ढहेगा तो उसके गुरुत्वकार्षण खिंचाव पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर आप ढहते पिंड से दूर होंगे तो आपको उसके कोलैप्स होने यानि ध्वस्त होन का पता भी नहीं चलेगा।

पर अगर आप ध्वस्त होते या ढहते पिंड की सतह पर होंगे तब माजरा कुछ अलग ही होगा। तब पिंड के ढहते समय आप केंद्र के पास, और पास आएंगे और तब आप अधिक, अत्यधिक गुरुत्वकार्षण बल का खिंचाव महसूस करेंगे।

जब तक यह ढहता पिंड 'व्हाइट-डुआर्फ' की स्थिति में पहुंचेगा तब तक आपका भार 1016-टन का होगा। 'न्यूट्रान-स्टार' की स्थिति में पहुंचते-पहुंचते आपका भार 15,000-करोड़ टन का होगा। और ढहने की इस प्रक्रिया में आप जैसे ही 'न्यूट्रान-स्टार' की स्थिति से गुजरेंगे आपका भार बढ़ता, और बढ़ता जाएगा...

ज्वार-भाटे का प्रभाव और प्रबल होता जाएगा, और तेज होता जाएगा।

'पलायन-गति' या इस्केप-विलौसिटी अधिक, और अधिक, अत्यधिक होती जाएगी।

'पलायन-गति' खासतौर पर बहुत महत्वपूर्ण है। जैसे-जैसे कोई ढहता या कौलैप्स होता पिंड 'न्यूट्रान-स्टार' के चरण से ग़ुजरता है वैसे-वैसे 'पलायन-गति' बढ़कर

299,783–किलोमीटर प्रति सेकंड से ज्यादा हो जाती है। और जब यह होता है तब प्रकाश, रेडियो–तरंगे, एक्स–रे और अन्य विकिरण अब इस पिंड को छोड़कर पलायन करने में असमर्थ होते हैं। वे इतनी तेज गति से नहीं चल पाते हैं। और भी कोई वस्तु पलायन नहीं कर पाएगी क्योंकि वैज्ञानिकों का मानना है कि कोई भी वस्तु प्रकाश की गति से तेज नहीं यात्रा कर सकती है।

ब्लैक होल का जो हर चीज को निगल रहा है।
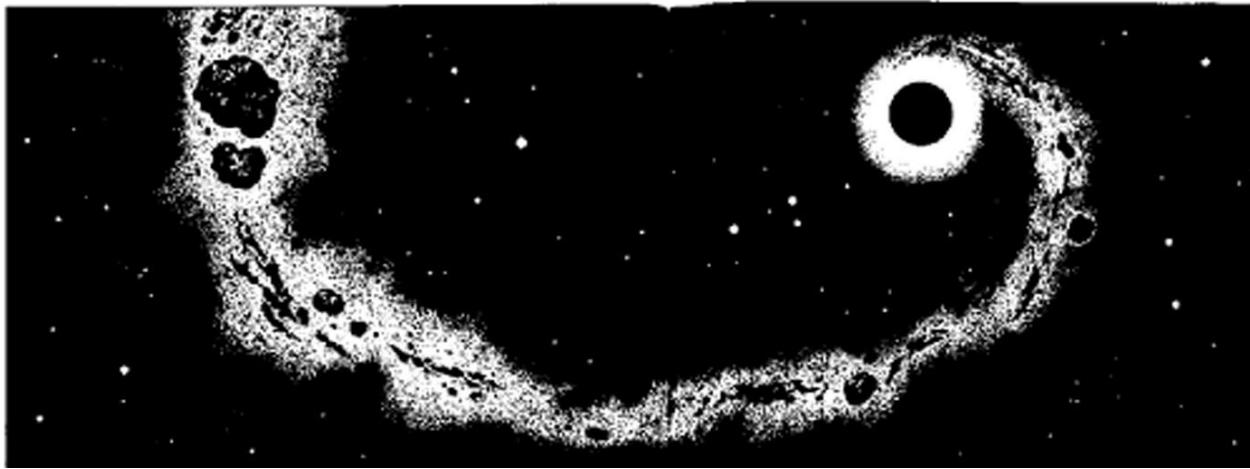
सतह से केंद्र की दूरी जब पिंड ढहता है जिससे उसमें से प्रकाश पलायन न कर सके तो उसे श्वार्सचाइल्स रेडियस (त्रिज्या) कहते हैं। इसकी गणना सबसे पहले जर्मन खगोलशास्त्री कार्ल श्वार्सचाइल्स ने की।

एक पिंड जिसका भार सूर्य जितना हो के लिए श्वार्सचाइल्स रेडियस करीब 2.9–किलोमीटर होगा। वो सतह से केंद्र तक 2.9–किलोमीटर होगा और फिर दूसरी ओर भी 2.9–किलोमीटर होगा। इसका अर्थ है कि अगर सूर्य सिकुड़ कर 5.8–किलोमीटर को हो जाए, और उसका भार वही रहे, तो फिर उसमें से प्रकाश कभी पलायन नहीं कर पाएगा। और भी कोई वस्तु उसमें से पलायन नहीं कर पाएगी।

अंतरिक्ष में इस प्रकार के पिंड की कल्पना करें। उसके पास जो भी चीज गुजरेगी वो उसमें फंस जाएगी। और ‘ज्वार–भाटे’ की प्रक्रिया से उस वस्तु की धज्जियां उड़ जाएंगी। उस वस्तु के टुकड़े कुछ समय तक उस छोटे पिंड के चारों ओर घूमेंगे पर अंततः वे उसमें गिर जाएंगे। इस पिंड में गिरी कोई भी वस्तु कभी बाहर नहीं निकलेगी।

यह अंतरिक्ष में ऐसा स्थान होगा जिसके अंदर चीजें जाएंगी परन्तु बाहर कुछ भी नहीं आएगा। इस छोटे पिंड को हम अंतरिक्ष में एक छेद या 'होल' कहेंगे। क्योंकि उसमें से कोई भी विकिरण यहां तक कि प्रकाश भी बाहर नहीं आ पाएगा, इसलिए वो पूरी तरह काला होगा। इसलिए उसका उपयुक्त नाम 'ब्लैक-होल' होगा। और इसी नाम से खगोलशास्त्री उसे बुलाते हैं।

6. ब्लैक-होल्स की खोज

क्या हम किसी तरह 'ब्लैक-होल्स' खोज सकते हैं?

अगर कोई 'ब्लैक-होल' पृथ्वी के नजदीक होता तो हम उसके गुरुत्वकार्षण बल को महसूस कर पाते। मान लें बृहमांड में 'ब्लैक-होल' है और वो हमसे बहुत दूर है। क्या हम तब उसे खोज पाएंगे?

उसे खोज पाने की सम्भावना बहुत कम लगती है। सूर्य जितने भार वाले 'ब्लैक-होल' का व्यास 'न्यूट्रान-स्टार' का आधा होगा। दूसरी बात, 'ब्लैक-होल' हम तक विकिरण के रूप में कोई संदेश नहीं भेज रहा होगा।

'ब्लैक-होल' वैसे ही इतना छोटा होगा, और फिर उससे कोई विकिरण नहीं आएगा। इस हालत में हम 'ब्लैक-होल' को भला कैसे खोजेंगे?

शायद हम 'ब्लैक-होल' कभी नहीं खोज पाएं। शायद 'ब्लक-होल्स' वो रहस्यमयी पिंड हैं जिन्हें खगोलशास्त्रियों ने कभी देखा नहीं है पर उनकी चर्चा जरूर करते हैं।

भाग्यवश 'ब्लैक-होल्स' को खोजने का एक तरीका है। वैसे तो 'ब्लैक-होल्स' में से कोई विकिरण बाहर नहीं निकलता है। पर जिन पदार्थों को 'ब्लैक-होल्स' निगलता है वे गिरते समय कुछ विकिरण भेजते हैं। उनसे 'एक्स-रे' निकलती हैं।

छोटी मात्रा जो भी पदार्थ 'ब्लैक-होल्स' में गिरता है उससे अल्प मात्रा में 'एक्स-रे' निकलती हैं। परन्तु करोड़ों-खरबों किलोमीटर की दूरी से उन्हें कैसे पहचाना जाए।

हम मान लें कि 'ब्लैक-होल्स' में लगातार काफी मात्रा में पदार्थ गिरता रहता है। दिक्कत यह है कि अंतरिक्ष बिल्कुल रिक्त है - वहां शून्य है - एकदम खाली है। कल्पना करें कि सूर्य एक 'ब्लैक-होल' में परिवर्तित हो गया है। तब भी दूर स्थित सारे ग्रह उसकी परिक्रमा करेंगे और सूर्य के अंदर नहीं गिरेंगे। और सूर्य के आसपास उसके अंदर गिरने के लिए अन्य कोई पदार्थ भी नहीं होगा।

रेड-जायंट और छोटा सफेद तारा एक-दूसरे की परिक्रमा करते हुए

यह इसलिए ह क्योंकि सूर्य एक अकेला-तारा है और उसके साथ उसके ग्रह हैं। वैसे अंतरिक्ष में लगभग आधे तारे जोड़ियों में रहते हैं। दो तारों का एक-दूसरे के समीप रहकर, एक-दूसरे की परिक्रमा लगाना बहुत आम बात है। कई बार इनमें से हरेक तारा हमारे सूर्य से कहीं अधिक बड़ा हाता है।

कल्पना करें दो बहुत विशाल तारों की जो एक-दूसरी की परिक्रमा कर रहे हों। उनमें से बड़े तारे का ईंधन पहले खत्म होगा, फिर वो फैलकर रेड-जायंट बनेगा और अंत में सुपर-नोवा जैसे उसका विस्फोट होगा।

यह सुपर-नोवा बहुत सारा पदार्थ (मलबा) बाहर फंकेगा और जो कुछ बचेगा वो ढह (कोलैप्स) कर एक 'ब्लैक-होल' बनेगा। विस्फोट के दौरान इस तारे द्वारा फेंका

हुआ कुछ मलबा दूसरे तारे में भी जाकर गिरेगा जिससे अब दूसरा तारा पहले की अपेक्षा कहीं ज्यादा भारी हो जाएगा।

'ब्लैक-होल' और उसका मित्र-तारा अब भी एक-दूसरे की परिक्रमा लगाएंगे। भारी होने के कारण अब मित्र-तारा अपना ईंधन बहुत तेजी से खर्च करेगा और वो खुद फैलकर एक 'रेड-जायंट' बन जाएगा।

इस नए 'रेड-जायंट' की बाहरी सतहें अब 'ब्लैक-होल' की ओर 'टाइडल' या ज्वार-भाटे के कारण खिचेंगी। इससे 'रेड-जायंट' का पदार्थ लीक करके 'ब्लैक-होल' में गिरेगा। और इस प्रक्रिया में बड़ी तादाद में 'एक्स-रे' उत्पन्न होंगी।

यह प्रक्रिया हजारों साल तक जारी रहेगी और इस सम्पूर्ण काल में 'एक्स-रे' उत्पन्न होंगी और वे अंतरिक्ष में हर दिशा में फैलेंगी। 'एक्स-रे' बड़ी मात्रा में उत्पन्न होंगी और बहुत दूरी पर भी उन्हें खोज निकालना सम्भव होगा।

'एक्स-रे' अंतरिक्ष में कहां से आ रही हैं? खगोलशास्त्रियों को यह जानना जरूरी होगा। अगर 'एक्स-रे' खास एक-बिन्दु से आ रही हैं तो उसका अर्थ होगा कि वो एक ढहते (कौलैप्सड) तारे से आ रही होंगी। वो तारा या तो 'न्यूट्रान-स्टार' होगा या फिर कोई 'ब्लैक-होल' होगा।

अगर स्रोत्र 'न्यूट्रान-स्टार' होगा तो 'न्यूट्रान-स्टार' के घूमने के साथ-साथ 'एक्स-रे' तेज बौछार (स्पंदनों) में आएंगी। पर अगर स्रोत्र 'ब्लैक-होल' होगा तो उसमें पदार्थ गिरने के कारण 'एक्स-रे' लगातार आएंगी। 'ब्लैक-होल' में कभी पदार्थ ज्यादा और कभी कम मात्रा में गिरेगा और उससे 'एक्स-रे' की मात्रा भी बढ़ेगी और घटेगी।

1965 में सबसे पहला 'एक्स-रे' स्रोत्र, सिगनस (हंस) नक्षत्र में मिला। वो एक बहुत शक्तिशाली स्रोत्र था और उसे 'सिगनस-एक्स-1' नाम दिया गया। उसके दो साल बाद जब पहला पल्सर खोजा गया तब खगोलशास्त्रियों को लगा कहीं 'सिगनस-एक्स-1' पल्सर यानि 'न्यूट्रान-स्टार' तो नहीं था।

खगोलशास्त्री तब 'एक्स-रे' स्रोत्रों के बारे में नया-नया सीख रहे थे। उनके पास इस बारे में पूर्व जानकारी नहीं थी।

फिर 1969 में एक विशेष उपग्रह (सैटालाइट) को अंतरिक्ष में भेजा गया। इसमें 'एक्स-रे' मापने के यंत्र लगे थे। इस उपग्रह ने 161 'एक्स-रे' स्रोत्रों को खोजा। और अब पहली बार खगोलशास्त्रियों को विषय पर काफी जानकारी हासिल हुई।

1971 तक उपग्रहों पर लगे उपकरणों से पता चला कि 'सिगनस-एक्स-1' से आ रही 'एक्स-रे' की तीव्रता बहुत अनियमित तरीके से बदलती रहती थी। इसका मतलब था कि 'सिगनस-एक्स-1' 'न्यूट्रान-स्टार' नहीं हो सकता था। तब क्या वो 'ब्लैक-होल' हो सकता था? खगोलशास्त्री सोचने लगे।

उन्होंने आसमान में उस स्थान - जहां से 'एक्स-रे' आ रही थीं का अध्ययन किया और पाया कि वहां से 'रेडियो-तरंगे' भी आ रही थीं। फिर 'एक्स-रे' और 'रेडियो-तरंगों' दोनों की मदद से उन्होंने उस स्थान का बहुत शुद्धता से पता लगाया। यह स्रोत्र एक दिखने वाले तारे के बहुत समीप था। इस तारे को तालिका में 'एचडी-226868' के नाम से दर्ज किया गया।

'एचडी-226868' क्योंकि पृथ्वी से बहुत दूर है इसलिए एक अत्यंत धुंधला तारा है। सम्भवत वो 10,000-प्रकाश वर्ष दूर था। इससे वो सिरियस की तुलना में पृथ्वी से 1100-गुना दूरी पर था।

उस तारे की दूरी मालूम पड़ने के बाद उसका भार सूर्य का 30-गुना निकला। और यह बड़ा तारा अकेला नहीं था। वो एक दूसरे तारे का 5.6-दिनों में एक चक्कर काटता था। इतनी जल्दी एक-दूसरे का चक्कर लगाने का मतलब था कि दोनों तारे एक-दूसरे के बहुत समीप थे।

एक्स-रे 'एचडी-226868' से नहीं आ रही थीं परन्तु उसके पास के एक बिन्दु से आ रही थीं। असल में एक्स-रे 'एचडी-226868' के साथी तारे से आ रही थीं। यह वो तारा था जिसका 'एचडी-226868' चक्कर काट रहा था।

'एचडी-226868' के चक्कर काटने की गति से खगोलशास्त्रियों ने उसके साथी-तारे का भार ज्ञात किया। वो सूर्य से 5 से 8 गुना भारी था।

पर साथी-तारे के स्थान पर अगर आप गौर से देखें तो आपको वहां कुछ नहीं दिखेगा। अगर वो साधारण तारा होता और उसका भार सूर्य से 5 से 8 गुना ज्यादा होता तो 10,000-प्रकाश वर्ष की दूरी पर भी उसे टेलिस्कोप्स से देख पाना सम्भव होता।

क्योंकि वो दिखाई नहीं देता है इसलिए वो एक ध्वस्त तारा होगा। इतनी दूरी पर व्हाइट-डुआर्फ और न्यूट्रान-स्टार दिखाई नहीं पड़ते। पर फिर व्हाइट-डुआर्फ और न्यूट्रान-स्टार अगर इतने बड़े होते तो वो आगे ध्वस्त हो चुके होते।

रेड-जायंट एक ब्लैक-होल के साथ चक्कर लगाता हुआ

इन कारणों से बहुत से खगोलशास्त्री अभी भी 'सिगनस-एक्स-1' को एक ब्लैक-होल मानते हैं। यह खोजा हुआ पहला ब्लैक-होल था। शायद ऐसे बहुत से ब्लैक-होल हों।

हमने अभी देखा कि तारों के ध्वस्त होने से ही ब्लैक-होल्स बनते हैं। इन ब्लैक-होल्स का भार तारों जितना ही होता ह और जैसे-जैसे वो और मलबा एकत्रित करते हैं उनका विकास होता है। दूसरी ओर कुछ छोटे पिंड भी बहुत सख्ती और बल से दबाने के बाद ब्लैक-होल्स बन सकते हैं।

1971 में एक ब्रिटिश वैज्ञानिक स्टीफिन हौकिंग्स ने सुझाया कि बृहमांड की उत्पत्ति के समय कुछ-कुछ इसी प्रकार का 'बिग-बैंग' हुआ होगा। आज जिस तमाम पदार्थ का बृहमांड बना है उसका विस्फोट हुआ होगा। और उस प्रक्रिया से कुछ पदार्थ बहुत कस के दबा होगा जिससे छोटे ब्लैक-होल्स बने होंगे। उनमें से कुछ ब्लैक-होल्स का भार छोटे ग्रहों के बराबर या उनसे भी कम होगा। इसलिए हम उन्हें 'मिनी ब्लैक-होल्स' कहते हैं।

हौकिंग्स ने यह भी दिखाया कि ब्लैक-होल्स अपना भार खो भी सकते हैं। उनके गुरुत्वकार्षण की कुछ ऊर्जा श्वार्सचाइल्स त्रिज्या के बाहर कणों में परिवर्तित होती है और यह कण पलायन करते हैं। पलायन करते यह कण ब्लैक-होल का कुछ भार लेकर जाते हैं। इस प्रकार वो ब्लैक-होल वाष्प बन कर लुप्त हो जाता है।

तारे जितने भारी बड़े ब्लैक-होल्स के वाष्प बनने की दर इतनी धीमी होती है कि उन्हें लुप्त होने में करोड़ों वर्ष लगेंगे। इस अंतराल में वो खोए पदार्थ से कहीं अधिक पदार्थ एकत्रित कर लेंगे। इसलिए वो कभी लुप्त नहीं होंगे।

ब्लैक-होल जितना अधिक छोटा होगा वो उतनी ही तेजी से वाष्प बनेगा और उसके द्वारा अतिरिक्त पदार्थ इकट्ठा करने की सम्भावना उतनी ही कम होगी।

एकदम छोटा ब्लैक-होल भार तेजी से खोएगा, और कम दर से भार एकत्र करेगा। वा छोटा होगा और इससे उसका वाष्पीकरण और तेज होगा, जिससे वो और छोटा बनेगा। अंत में जब वो बहुत छोटा हो जाएगा तो वो एक विस्फोट में भाप में बदल जाएगा। इससे विकिरण बाहर निकलेगा जिसकी ऊर्जा एक्स-रेज से कहीं अधिक होगी। यह विकिरण गामा-रेज का होगा।

बिग-बैंग के समय 1500-करोड़ वर्ष पहले बने मिनी ब्लैक-होल्स शायद अब लुप्त हो रहे हों। हौकिंग्स ने उत्पत्ति के समय उनके आकार की गणना की और विस्फोट के समय उनसे किस प्रकार के गामा-किरणें निकलेंगी इसकी भी गणना की।

अगर खगोलशास्त्री उन गामा-किरणों को खोज पाएं जिनकी हौकिंग्स ने भविष्यवाणी की थी तो यह इस बात का पुख्ता प्रमाण होगा कि मिनी ब्लैक-होल्स की उत्पत्ति हुई थी और वे आज भी हैं। पर आज तक इस प्रकार की गामा-किरणें नहीं मिली हैं।

पर क्या पता वो कब मिल जाएं? और सिगनस एक्स-1 तो है ही।

खगोलशास्त्री शायद भविष्य में ब्लैक-होल्स के बारे में और रोचक और अचरज भरे तथ्य खोजें। इस सब जानकारी से हमें अपने बृहमांड को बेहतर तरीके से समझने में मदद मिलेगी।

अंत